IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आधुनिक बिहार में कृषक समाज एवं कृषि अर्थव्यवस्था की एक झलक

Sanju Kumari
Research Scholar
Department of History
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga

Abstract: 1765 में बंगालए बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिलने के बाद अधिक से अधिक मालगुजारी तहसीलना ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रमुख उद्देश्य बन गया। भारत में कृषि अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थाए इसलिए सरकारी आय का मुख्य स्त्रोत भी यह था। फलतः कम्पनी अपनी आय बढ़ाने के क्रम में भू- राजस्व वसूली बढ़ाने के लिए अनेक प्रयोग किए। राजस्व वसूली के नित नए प्रयोग एवं कम्पनी की लालच ने पूरे सूबे में कृषि अर्थ-व्यवस्था और कृषक समाज को पूरी तरह अस्त-व्यस्त कर दिया। 1770 का विनाशकारी अकाल जिसने लगभग एक तिहाई आबादी को नष्ट कर दियाए कम्पनी की इसी अराजकता का प्रतिफल था। इस अकाल ने न केवल बंगाल बिहार एवं उड़ीसा के खेतीहरो को तबाह किया अपितु कम्पनी के व्यापार को भी प्रभावित किया। उस समय कम्पनी के यूरोपीय नियांत की दो प्रमुख मदें थी रेशम और कपासए जो कृषि आधारित थीं। साथ ही कृषि उत्पादन में गिरावट से देसी दस्तकारी उद्योग का भी विनाश होने लगा। जिसके चलते न केवल कृषि अर्थव्यवस्था बदली बल्कि कृषक समाज में भी व्यापक परिवर्तन हुए।

Index Terms - कृषक, अर्थव्यवस्था, समाज, बिहार, कम्पनी, ।

Introduction

स्थायी बन्दोबस्त अंग्रेजी द्वारा बंगाल सूबे में लागू किया गया सबसे प्रभावशाली इंतजामए था जो 1950 के दशक तक बिहार में कायम रहा । कम्पनी प्रशासन का मानना था कि जमींदारों के साथ स्थायी बन्दोबस्त उन्हें कम्पनी शासन के पक्के मित्र बना देगी और इसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में शांति और स्थिरता का वातावरण कायम रहेगाए जिसका कृषि अर्थव्यवस्था पर अनुकूल असर पड़ेगा। साथ ही कम्पनी सरकार की भू-राजस्व मांग की स्थायी सीमा निर्धारित करने से जमींदारों को जंगल साफ करने तथा खेती की जमीन के क्षेत्रफल बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। इसके अलावे जमींदारों की सरकार के प्रति देनदारी स्थायी रूप से सीमित होने ए कृषि योग्य भूमि के विस्तार होने और रैयतों के साथ जमींदारों की बन्दोबस्ती में लगान बृद्धि होने की संभावना के कारण कम्पनी एवं जमींदारों के हक में से यह व्यवस्था अच्छी थीए किन्तु रैयतों पर इसका दबाव लगातार बढ़ता रहा । जिसे हम अपने अध्ययन काल के बिहार के कृषक समाज में लगातार हुए परिवर्तनों से पाते हैं।

बिहार का ग्रामीण कृषक समाज कृषकों एवं दस्तकारों की मिलीजुली संरचना थीए जिसमें कृषि अर्थव्यवस्था का मूलाधार थी एवं दस्तकारी और उद्योग-धंधे इसके पूरक थे। 1833 तक कमोवेश बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में चलने वाले उद्योग चलते रहेए किन्तु कम्पनी की धन लोलुपता ने शनैः- शैनेः इसे पतन से विनाश की ओर ढ़केल दिया। बिहार की कृषि व्यवस्था जो अपने उद्योगों के लिए उत्पादन करती थी। कम्पनी प्रशासन के अधीन यह इंगलैण्ड के उद्योगों के लिए कच्चे माल का उत्पादन करने लगी। दूसरी

तरफ इंगलैण्ड में जैसे-जैसे औद्योगिक क्रांति मजबूत होते गयी बिहार का विशाल कृषक समाज इसके उत्पादों का बाजार बनता गया। आयात निर्यात के इस चक्र को चूंकि अंग्रेज उत्पादक एवं इस्ट इण्डिया कम्पनी नियंत्रित करती थी फलतः यहाँ का देशी उद्योग एवं दस्तकारी कच्चे माल के अभाव में एवं मील उत्पादित उत्पादों के तीव्र एवं संरक्षित प्रतिस्पर्धा के कारण नष्ट होते गये।

अठारहवीं सदी के अन्तिम और उन्नीसवीं के आरमिभक वर्षों में कम्पनी सरकार के भू-राजस्व सम्बन्धी सुधारों एवं नई नीतियो ने बिहार के ग्रामीण समाज को बुनियादी तौर पर प्रभावित और परिवर्तित किया। इस नए उभरते कृषक समाज के ढाँचे पर डेनियल थॉर्नर एवं डी० एन० धनाग्रे सरीखे कृषक इतिहासकरों ने एक मॉडल का सहारा लिया है। इन इतिहासकारों ने जिस मॉडल का सहारा लिया हैए थोड़ी -बहुत क्षेत्रीय भिन्नता के साथ यह सम्पूर्ण भारत में एक जैसा दिखता है। कृषक समाज की संरचना मे पहला समूह बड़ी जागीरो अक्सर अनेक गाँवों पर आधारित जागीरों पर मालिकाना अधिकारों से सम्पन्न जमींदारों का था। इनके बाद अधिकांश बिहार के संदर्भ में गैर-हाजिर लगानखोर वर्ग के जमींदार थेए जिनकी भूमि के प्रबन्ध या कृषि के सुधार में दिलचस्पी नहीं थी या नहीं के बराबर थी। इस वर्ग में बिहार के कतपय बड़े जमींदार थे जैसे कि राज दरभंगाए हथुआए टेकारी आदि।

साहित्यिक समीक्षा

गैर-हाजिर जमींदारों में मूलतः कलकत्ता के बड़े व्यापारी थेए जिन्होंने अपनी अतिरिक्त पूँजी का निवेश जमींदारी खरीदने में की थी। जहाँ पहले वर्ग के जमींदार अधिकांशतः पुश्तैनी थेए एवं स्थानीय कृषकों के साथ इनका संबंध पारम्परिक था। वहीं दूसरी ओर गैर-हाजिर जमींदार कम से कम समय और खर्च में अधिक से अधिक लगान वसूलना चाहते थेए फलतः कृषको पर कई प्रकार के गैर-कानूनी अबवावों का दबाव बढ़ गया।

कृषक समाज में तीसरा समूह धनी किसानों का थाए जिन्हें आसानी से दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता था। इनमें एक उपवर्ग धनी भू-स्वामियों का थाए जिन्हें जमीन पर मालिकाना हक हासिल था। ये आम तौर पर अपने ही गाँव में और व खेती में स्वयं भाग भले ही न लेते होंए उसमें निजी दिलचस्पी जरूर लेते थे। इनकी स्थिति अपने से निचले स्तर के कृषकों से काफी अच्छी होती थी इस समूह में दूसरा उपवर्ग धनी पट्टेदारों के दखली अधिकारों को सुरक्षा प्राप्त होती थी और वे जमीदारां को नाममात्र लगान देते थे।

कृषक समाज में अगला समूह मझोले किसानों का था। इस समूह को भी दो उपसमूहों में बाँटा जा सकता था। मझोले आकार की जीतों के स्वामी या आत्मनिर्भर किसान जो परिवारिक श्रम के सहारे काम करते थेए इस समूह का सबसे बड़ा उपवर्ग था। बिहार के अधिकांश मध्यम जाति के किसान इसके अन्तर्गत आते थें । वास्तविक रूप से इस उपवर्ग में समाज का सबसे मेहनती वर्ग आता था जो कृषि कर्म के साथ ही पशुपालन का भी काम करता था। समाज की सबसे अधिक उत्पादन क्षमता इन्हीं के पास थी। इस समूह में दूसरा उपवर्ग खासी बड़ी जोतों वाले पट्टेदार जो दूसरी विशेष सुविधाओं से सम्पन्न पट्टेदारों से अधिक लगान देते थे। इनमें जमींदारों की खास जमीन पर या बड़ें किसानों की जमीन पर बटाई करने वाले किसानों का वर्ग आता था। इनका जमीन पर मालिकाना हक नहीं होता थाए फिर भी जोतों के आकार के लिहाज से ये अच्छी-खासी जमीन जोत करते थे।

चौथा समूह गरीब किसानों का थाए जिनके पास अपने कुटुम्बों के भरण-पोषण के लिहाज से पर्याप्त जमीन नहीं होती थी। और इन्हें अपना सालाना खर्च निकालने के लिए बहुधा अपना श्रम भी बेचना पड़ता था। इस वर्ग में छोटी जोत वाले पट्टेदारए जिनको पट्टेदारी पर कोई सुरक्षा प्राप्त नहीं थी तथा छोटे बटाईदार या गैर-दखली असामी भी आते थे। इनके बाद अन्तिम समूह भूमिहीन कृषि मजदूरों का थाए जो बहुधा बन्धुआ मजदूर भी होते थे। यह वर्ग पूर्ण रूप से अपने श्रम के सहारे अपना जीवन-यापन करते थे।

1757 में पलासी विजय के बाद इस्ट इंडिया कम्पनी ने अगले सौ वर्षों तक जिस प्रकार भारत में शासन कियाए उसके फलस्वरूप बिहार में दस्तकारी एवं देशी उद्योगों का नाश होता गया। जैसे-जैसे देसी उद्योगों का नाश होता गयाए इस क्षेत्र में कार्यरत दस्तकार बेराजगार होते गएए एवं ग्रामीण समाज में भूमिहीन कृषि मजदूरों के रूप में कार्य करने लगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि थॉमस कोलब्रुकए जो तिरहुत एवं पूर्णिया में प्रशासकीय पदाधिकारी के रूप में कार्य कर चुके थेए ने 1783.93 के बीच के कालखण्ड पर बंगाल सूबे के बारे में काफी विस्तर से लिखा है। कालबुक का उपरोक्त अध्ययन कम्पनी शासन के आरम्भिक वर्षों में बिहार की आर्थिक स्थिति के बारे मे एवं कृषि के बारे में काफी जानकारी देता है। वहीं 1809.10 के वर्षों में फांसिस बुकानन ने बिहार के विभिन्न जिलों का सर्वे कियाए बुकानन के काल तक बिहार में दस्तकारी एवं देसी उद्योगों का विनाश नहीं हुआ था। अलबत्ता यह अधोपतन की ओर अग्रसर अवश्य हो चुका था।

1857 तक देशी उद्योगों का लगभग विनाश हो चुका थाए एवं ग्रामीण समाज में कृषि एकमात्र जीविका का साधन बन चुका था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बिहार में रेलों का विकास हाने लगाए एवं साथ ही कृषि का वाणिज्यीकरण होने लगा। रेलो के श्विकास ने कृषि के वाणिज्यीकरण को बढ़ावा दियाए जिससे कृषि अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन परिलक्षित होता हैं दूसरी ओर जैसा कि प्रो० बी० बी० चौधरी का अध्ययन प्रदर्शित करता हैए कि बंगाल सूबे में निर्किसानीकरण की गति जोड़ पकड़ने लगी थी। बहुत हद तकं निर्किसानीकरण की यह प्रक्रिया कृषि के वाणिज्यीकरण का प्रतिफल था। जहाँ कृषि क्षेत्र में बागवानीए जूटए गन्नाए तम्बाकू नील आदि नकदी फसलों उत्पादन की प्रक्रिया तेज हुई। वहीं कृषि क्षेत्र में इन नकदी फसलो का उत्पादन बढ़ने का एक बहुत बड़ा कारण भूराजस्व की नकदी में भुगतान एवं आवश्यक चीजों का आयातित स्वरूप था। जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों में नकदी की मांग बढ़ी एवं कृषि अर्थ-व्यवस्था का स्वरूप बदला।

पुनः एक बार पूर्व में वर्णित कृषक समाज के ढाँचे पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैए कि यह एक पिरामिड के स्वरूप का ढाँचा हैए जिसके शीर्ष पर कम्पनी से स्थायी बन्दोबस्त प्राप्त जमींदार वर्ग है एवं जिसके आधार पर खेतीहर मजदूर वर्ग है। 1858 से 1947 के बीच खासकर बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में जमीदारी की कॉफी

खरीद-फरोक्त हुई एवं जमींदारों की संख्या काफी बढ़ी हालाँकि जमींदारी का आकार घटता गया किन्तु जमींदारियो की संख्या बढ़ती गयी। दूसरी ओर आधार पर भूमिहीन कृषि मजदूरों की संख्या में भी लगातार बढ़ोतरी होती रही। उन्नीसवीं शताबदी के. किसी भी दशक में पूरे कृषक समाज में उनकी संख्या 60 प्रतिशत से कम नहीं रहीए किन्तु इनकी संख्या बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों मे बढ़कर 70 प्रतिशत से अधिक हो गयी। इसका मूल कारण देशी उद्योगों का विनाश और छोटे पट्टेदारों एवं क़िसानो का अपनी जमीन या जातों से बेदखली था।

वास्तव में खेतिहर सामाजिक ढाँचे की इन पेचीदगियों का 1858 के पहले की अपेक्षा उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में काफी विकास हुआ । भारतीय कृषक समाज पर डेविड हार्डिमन ने अपने विचार प्रकट करते हुए इसका वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। यह वर्गीकरण व्यापक तौर पर बिहार के कृषक समाज पर भी लगभग ठीक बैठता है। इस वर्गीकरण मे सबसे पहला वर्ग ग्रामीण धनिकों का था जो जमीदारों की हैसियत से अपनी शक्ति बढ़ाते जा रहे थे। इस वर्ग के आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से देखें तो कृषि के वाणिज्यीकरण से इसी वर्ग को सर्वाधिक लाभ मिल रहा था। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण कुंजी नकदी इन्हीं के हाथों में स्थिर थी। ये मनमाने ब्याज दर पर किसानों को कर्ज देते थे एवं कर्ज न चुका पाने की स्थिति में उनकी जोतों पर कब्जा जमा लेते थे। इस प्रकार अपनी पूंजी का निवेश वे ग्रामीण बाजार में एक तरफा लाभ की दृष्टि से करते थे। इनका दबदवा एवं अधिकार लगातार बढ़ता रहा था। इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम स्वामी विद्यानन्द के पूसा आन्दोलन में उभरकर सामने आया था।

श्इस सामाजिक ढाँचे में हार्डिमन ने दूसरा वर्ग किसानों का स्थिर किया है। यह द्य वर्ग धनी एवं सामान्य किसानों का मिला जला वर्ग है। हार्डिमन के इस वर्ग में अधीन जिन कृषकों को रखने का प्रयास हुआ हेए उन्हें अगर बिहार के मामले में मझोले जोतों वाले किसानों तक ले आएँ तो यह एक स्थिर वर्ग प्रतीत होता है। इस वर्ग का सामान्य खेतिहर अर्थ-व्यवस्था में सबसे बड़ा योगदान है। एक तरफ ये उत्पादक भी है दूसरी तरफ वितरण एवं विपणन मुख्यतया इसी वर्ग के अधीन रहा है। हार्डिमन ने तीसरी श्रेणी में छोटे किसानों को रखा है। हार्डिमन के वर्गीकरण में खेतीहर भूमिहीन मजदूरों को शामिल नहीं किया गया है। जबकि कृषक समाज में इनकी संख्या अध्ययन के कालखण्ड में सबसे अधिक रही है।

कृषि अर्थ- व्यवस्था में सामान्यत- कृषि कार्य - प्रबन्धए विपणनए सहकारिता भू-धारण पद्धतियाँए ग्रामीण कृषि साख कृषि नीति कृषि मूल्यों का विश्लेषण एवं इतिहास को सम्मिलित किया जाता है। प्रस्तावित शोध में तत्कालीन कृषि व्वस्था के सभी पहलुओं यथा उत्पादनए उपभोगए विनिमय तथा वितरण का अध्ययन किया जाना है। जाहिर है कि बिहार के किसान इस काल में किस प्रकार की कृषि करते थेए उनके पैदावार की प्रवृति किस प्रकार परविर्तित हुई वाणिज्यीकरण का प्रभाव कृषक समाज एवं कृषि प्रवृति पर किस प्रकार पड़ा एवं अपनी आय बढ़ाने के लिए कृषकों ने अन्य किस प्रकार के सहायक उद्योगों या कार्यो को अपनाया आदि विषयों पर चर्चा की जानी है।

1885 में बंगाल टिनैन्सी अधिनियम के पारित होने एवं 1896 से 1907 तक चले भूमि सर्वेक्षण एवं धारण के कार्यो ने बिहार के रैयतों के बीच काफी उत्साह का संचार किया। जिसके कारण रैयतों ने भू-राजस्व की पावती रसीद के लिए एवं अबवावओं के बोझ से अपने को मुक्त करने के लिए संघर्ष प्रारम्भ किया। ब्रिटीश सरकार द्वारा भूमि के लिए भी कई अधिनियम लाए गएए हलाँकि वास्तविक रूप से इन अधिनियमों से रैयतों से अधिक जमीदारों के हितो की रक्षा का प्रयास किया गया। फिर भी रैयतों को जैसे-जैसे -

इन अधिनियमों के प्रावधानों का ज्ञान होता गया वे अपने हितों की रक्षा के लिए गोलबन्द होते गए। बिहार की कृषि अर्थ-व्यवस्था को समझने के लिए ग्रामीण ऋण के दुःचक्र को समझना आवश्यक है। ग्रामीण ऋण पर स्थानीय महाजनों का पूरा कब्जा थाए ये महाजन ग्रामीणों की आवश्यकता के अनुरूप कर्ज देते थेए किन्तु व्याज की दर एवं शर्ते महाजन के अनुसार होती थी। ऋण की जरूरत उत्पादन और उपभोग दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पड़ती थी। भू-राजस्व का नकदी में भुगतान ने ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों को ऋण के लिए प्रेरित करना प्रारम्भ किया। दूसरी ओर अनावृष्टि या अतिवृष्टि या अतिवृष्टि में फसल कमजोर होने पर अपनी जोत को सुरक्षित रखने के लिए किसानों को ऋण की आवश्यकता पड़ती थी। साथ ही अंग्रेजी शासन काल में भूस्वामित्व संबंधी अधिकारों का इतना फैलाव हुआ कि सरकार और रैयतों के बीच ढेर सारे बिचौलिए आ गए। कई मामलों में जमीन के असली काश्तकारों को अपनी जमीन पर कानूनी कब्जा नहीं रहाए दूसरी ओर जैसा कि हमने ऊपर वर्णन किया है कि शहरी दस्ताकार गाँवों में जाकर सीमांत किसान या भूमिहीन मजदूर बन गए। इस वर्ग को अपनी हर आवश्यकता के लिए ऋण पर आश्रित होना पड़ता था। महाजन और व्यापारी ऋण के प्रमुख श्रोत थे। सांस्थानिक स्त्रोत के अभाव में कृषको के पास दूसरा विकल्प भी नहीं थाए फलतः अपने एकाधिकासर का फायदा उठाते हुए साहूकार किसानों का ऋण के रास्ते जमीन 14 से बेदखल करने लगे। व्यापरीगण किसानों को मजबूर करते थे कि वे अपनी पैदावार उन्हीं को उन्हीं द्वारा निर्धारित कीमतों पर बेचे। जैसे ही कोई किसान कर्ज के चक्र में फंसता था उसका उससे निकलना असम्भव हो जाता था। बिहार के अधिकांश किसान पुश्तैनी कर्ज के बोझ के नीचे दबे रहते थे। कृषि के अलावे शादी-व्याहए अंतिम संस्कार और विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों के लिए भी किसान कर्ज लेते थे। कभी-कभी किसानों को ब्याज संबंधी देनदारियों को चुकाने के लिए भी कर्ज लेना पड़ता था। कपड़ेए नमकए खेती के औजार एवं अन्य आवश्यक जींस जो पहले कृषि -उपज या सेवाओं के बदले प्राप्त होती थीए अब बाहर बाजार से नकद भुगतान पर प्राप्त करनी पड़ती थी। ग्रामीण आर्थिक संरचना एवं व्यवस्था में यह कमिक बदलाव कृषक समाज पर काफी प्रभाव डाला।

नकदी की बढ़ती आवश्यकता ने कृषकों को ऐसे कृषि-उत्पादन की ओर आकर्षित किया॰ जिसे आसानी से नकद में बेचा जा सके । फलतः कृषि उत्पादन पर बीसवीं शताब्दी में धीरे-धीरे बाजार का नियंत्रण कायम होता गया। इसके साथ ही रेलों के विकास एवं स्वेज नहर के खुलने से भारत का कच्चे माल का निर्यात बढ़ा एवं इंगलैण्ड से आयातित जींसों का बाजार बढ़ा । इस व्यापार को वाष्प चालित नौ परिवहन - ने और सुलभ कर दिया। इन सभी कारकों ने समवेत रूप से बिहार के किसानों के लिए ध्र बड़े बाजार को जन्म दिया॰ जहाँ वे अपनी उपज नगद में एवं तीव्र गति से बेच पाते थे। फलतः कलकत्ता के व्यापारियों के नियंत्रण में धीरे-धीरे बिहार की कृषि जाने लगी। बाजार की मांग के अनुरूप कृषि उपज में आया यह बदलाव आर्थिक इतिहास में कृषि के वाणिज्यीकरण के नाम से जाना जाता है। इंग्लैण्ड के उद्योगों को यहाँ के कृषि उत्पादों की आवश्यकता थी॰ फलतः व्यापारियों से बिहार की कृषि को व्यावसायिक बनाने का प्रयास किया। खाद्यान्नों को विस्थापित कर नील॰ जूट॰ गन्ना एवं तम्बाकू की खेती के लिए कृषकों को प्रोत्साहित किया गया। किसान भी अपनी नकदी की आवश्यकता का पूर्ति के लिए इन उत्पादों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया। यही कारण है कि नील की खेती व्यवसायिक रूप से अलाभप्रद होने लगी तो बीसवीं शताब्दी में बाजार ने इसकी खेती को अवरूद्ध कर दिया। इस प्रकार बाजार की मांग कृषि उत्पादन के लिए निर्णायक होने लगी। इसमें शहरीकरण की भूमिका भी निर्णायक रही। बीसवीं शताब्दी में जिस तीव्रता से बिहार में शहरों का विकास हुआ॰ उसने ग्रामीण क्षेत्रों में फल॰ सब्जी॰ ध॰ घी आदि के उत्पादनों का बढ़ावा दिया।

ब्रिटिश शासकों के खिलाफ बिहार के किसानों की लड़ाई प्रायः उतनी ही पुरानी है जितना ब्रिटिश शासन जब हम विश्व इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो देखते है कि प्रायः विश्व में होने वाली किसी महान राष्ट्रीय आन्दोलन में किसानों की भूमिका सराहनीय रही है। 1789 में होनेवाली फ्रांस की राज्य क्रांति॰ 1911 में चीन की क्रांति तथा 1917 की रूसी क्रांति का सूत्रपात वस्तुतः मध्यमवर्ग के द्वारा ही हुआ। असंतोष की ज्वाला वस्ततुः किसानों के हृदय से ही 000 थी जिसको प्रखर रूप देने में सम्पूर्ण देशवासियों ने सहयोग दिया था। किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता खासकर वैसे देशों में जहाँ कृषकों की प्रधानता हो किसानों के सहयोग के बिना समंव नहीं है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में किसान आन्दोलन की भूमिका सराहकीय है। कुछ भारतीय नेताओं का ध्यान किसानों की दयनीय तथा उपेक्षित अवस्था की ओर गया और उन्होंने किसानों को संगठित कर उन्हें अंग्रेजों के पिठू जमींदारों के अत्याचार तथा शोषण के चंगुल से मुक्त कर उनके हृदय में निर्भरता तथा स्वतंत्रता का बीज बोने का प्रयास किया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन के बाद 1934 से 1936 ई0 के बीच भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्र धार मुख्य रूप से किसान आंदोलन के कार्यकर्ता ही रहे और उन्होंने ही इस बीच आंदोलन को जारी रखा और उसे गतिशीलता प्रदान की। भारतीय किसानों में विदेशी सत्ता के विरूद्ध तीव्र विरोध की भावना उस समय से ही शुरू हुई॰ जब ईस्ट ई० कं0 को 1765 ई० में बंगाल की दीवानी का अधिकार प्राप्त हुआ और अंग्रेज किसानों के संपर्क में आए। 1772.1789 के बीच फकीर तथा संख्या का महान आंदोलन भारतीय भूमि पर ब्रिटिश आधिपत्य के बीच अंग्रेजों के खिलाफ किया गया प्रथम भारतीय किसान आंदोलन था। विदेशी शासन के खिलाफ प्रारंभिक विद्रोह अधिकांशतः पूर्णरूपेण अनपढ़ किसानों द्वारा ही किया गया था।

विदेशी शासन के आर्थिक शोषण की नीति ने किसानों में असंतोष का वातावरण उत्पन्न कर दिया और उनके दिल में उमड़ती असंतोष की ज्वाला विद्रोह की चिनगारी के रूप में देश के विभिन्न भागों में छिटकने लगी। 1770 ई0 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा जिसमें सम्पूर्ण जनसंख्या का 30 प्रतिशत तथा किसानों के 50 प्रतिशत लोगों को भुखमरी का शिकार बनना पड़ा। इस भीषण परिस्थिति ने किसानों को आंदोलन के लिए बाध्य किया।

ब्रिटिश कालीन बिहार की अर्थव्यवस्था भी लगभग पूरी तरह कृषि पर ही आधारित थी और भू-राजस्व आय का सबसे बड़ा स्रोत था । पूरा प्रदेश लगभग एक लाख जागीरों में बंटा था। काश्त की जानेवाली कुल भूमि दो करोड़ चालीस लाख) एकड़ थी। चावलए गेहूँए चनाए मकई और ज्वार की कुल पैदावार लगभग 40 लाख टन थी। 1912.13 ई0 में भू-राजस्व के रूप में कुल एक करोड़ सत्तावन लाख उनचालीस रूपये की वसूली की गई थी।

जागीरें तीन श्रेणियों में बंटी थीं। स्थायी बंदोबस्त वालीए अस्थायी बंदोबस्तवाली और सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रणवाली। 19वीं सदी के आरंभ में प्रदेश की गरीब तीन करोड़ की कुल आबादी में जमींदारों और उन पर निर्भर लोगों की आबादी लगभग साढ़े छह लाख थी। 20ए000 एकड़ से अधिक की जागीरवाली रियासतों की संख्या मात्र 474 थीए जबकि 90 प्रतिशत जागीर 500 एकड़ से भी

कम की थी। सबसे बड़ी रियासत दरभंगा महाराज की थी जो पांच जिलों में 2400द्ध वर्गमील में फैली थी और जिसकी आय जिसकी आय लगभग एक करोड़ रूपये थीए सबसे छोटी डेढ़ एकड़ की एक जमींदारी पटना जिले के भरतपुरा गांव में थी जिसकी आमदनी मात्र चार आने की थी। इन जमींदारों के पास काफी बड़ी मात्रा में अपनी निजी जमीन भी थी।

Refrences:

- रंजु कुमारीए 'स्वामी सहजानन्द एवं बिहार का किसान आन्दोलनश्ए प्रज्ञा प्रकाशनए मुजफ्फरपुरए 1993ए पृ0 .23
- सुधीर चन्द्रए श्द ऑपरेसिव प्रेजेन्ट लिटरेचर एण्ड सोशल कन्सससनेस इन कोलोनियल इंडियाएकैम्ब्रिज युनि0 प्रेसए न्यूयार्क ए1972ए पृ0 .61
- कौशल किशोर शर्माएए श्अग्रेरियन मूवमेन्ट एण्ड कांग्रेस पॉलिटिक्स इन बिहार (1924.1947द्ध ऑस्कर पब्लिकेशनएदिल्ली ए 1989ए पृ0 .72
- सुनील सेनए श्एग्रेरियन स्ट्रगल इन बंगालए पीपुल्स पब्लिशिंग हाउसए नई दिल्लीए 1972ए ए0 आर0 देसाईए 'पीजेन्ट स्ट्रगल इन इंडियाश पॉपुलर प्र0 ए बॉम्बेए 1979ए पृ0.42
- के0 के0 दत्ताए हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेन्ट इन बिहारए बिहार पब्लिशिंग कॉरपोरेशन ए पटनाए1957एपृ0 65
- रंजीत गुहाए श्एलीमेन्ट्री आसपेक्ट्स ऑफ पीजेन्ट इमरजेन्सी इन कोलोनियल इंडियाए ऑक्सफोर्ड युनि प्रेसए नई दिल्लीए 1983ए पृ0 82
- वेकए इ0 एफ0 श्बेन्द्राए पीजेन्ट सोसायटी इन कोंकू : ए स्टडी ऑफ टाइप एण्ड लेफ्ट सब कास्ट्स इन साउथश ए ब्रिटिश कोलंबिया युनिवर्सिटी प्रेसए बेंकाउवर ए 1972ए पृ0 91
- इआन जॉर्ज नेफोर्डए तेलंगाना इन्सटेक्शन : ए स्टडी इन कॉज एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ ए कम्युनिस्ट इन्सरेक्शन इन रूरल इंडिया ए 1946 .1951 अप्रकाशित पी-एच0 डी0 थेसिस ए ऑस्ट्रेलियन नेशनल युनिवर्सिटी प्रेसए 1961ए पृ0 120
- आन्द्रे वेतलेए श्द कॉजेज ऑफ अग्रेरियन अनरेस्ट श द सिटीजनए पीपुल्स पब्लिशिंग हाउसएनई दिल्लीए1970